सन्तोष खन्ना

विधि भारती परिषद : एक नज़र

यह स्वाभाविक ही हे कि देश का लगभग हर नागरिक अपने देश की उपलब्धियों पर प्रसन्न होता है और गर्व से उसका सीना फूला नहीं समाता। यह भी कटु सत्य है कि देश की समस्याएँ, अभाव-तनाव उसे परेशान कर देते हैं। ऐसी स्थिति में वह या तो व्यवस्था को कोसता है या आगे बढ़ कर उन समस्याओं के समाधान में अपनी रचनात्मक भूमिका निभाना चाहता है। हर व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार अपना योगदान देना चाहता है, चाहे वह योगदान समुद्र में बूँद के समान ही क्यों न हो।

बात वर्ष 1990 और 1991 की है। लोकसभा में एक ज़िम्मेदार अधिकारी के रूप में मुझे उन दिनों लोक सभा की कार्यवाही को कवर कर उसका हिंदी-अंग्रेज़ी सारांश तैयार करना होता था जिसके कारण कार्य-दिवस का मुझे काफ़ी समय सदन में बैठ कर जनता के प्रतिनिधियों अर्थात् संसद-सदस्यों के भाषण सुनने का अवसर मिलता था। संसद की कार्यवाही के दौरान जन-प्रतिनिधि सदन में देश के कोने-कोने में रहने वाली जनता की समस्याओं, कष्टों और मुसीबतों को उठाते थे और अपने विचार व्यक्त करते थे। वैसे तो मैं सातवें दशक से संसद में कार्यरत थी और अपने दिन-प्रति-दिन कार्य के माध्यम से और मीडिया के माध्यम से देश के हालात के बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी रखती थी।

अब हर दिन का काफ़ी समय उन समस्याओं पर चिंतन-मनन होता सुनते रहने से उसका मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। और मुझे इस बात का अहसास ही नहीं बल्कि महसूस होता था कि उन दिनों मैं इन सब स्थितियों की साक्षी ही नहीं बल्कि उसमें सहभागी भी हूँ और इस दिशा में मैं किसी तरह आगे बढ़ कर मैं उसमें सक्रिय योगदान करना चाहती थी। यद्यपि देश की संसद के संचालन से संबद्ध होने के कारण इस विषय में काफ़ी प्रामाणिक ज्ञान था परंतु किसी तरह का मुगालता नहीं था कि संसद में जन-प्रतिनिधि के रूप में पहुँच योगदान किया जा सकता है।

देश समाजवादी नीतियों के माध्यम से देश की अधिकांश समस्याओं को सुलझाने

में प्रयासरत् था। सूचना-क्राँति का आरंभ हो चुका था किंतु आर्थिक सुधारों की पदचाप भी अभी सुनाई नहीं दे रही थी, किसी न किसी कारण से राजनीतिक अस्थिरता भी थी। कुल मिला कर देश के पास इतने संसाधन नहीं थे कि देश से गरीबी, अशिक्षा, रोग आदि समस्याओं से पूरी तरह निपटा जा सके। संसद में आए दिन देश के लोगों द्वारा भोगे जा रहे दुःख-दर्द संबंधी समस्याओं को सुन मेरा लेखकीय संवेदनशील मन और संवेदनशील होता। एक अजीब प्रकार का अनकहा एवं अनचाहा तनाव बना रहता। मन के किसी अनजाने कोने में एक अनजानी सोच निरंतर चलती रहती। स्पष्ट कुछ नहीं था। बस एक छटपटाहट थी।

मैं अपनी कविताओं में जिन विचारों और भावों को अभिव्यक्त करती, वह राष्ट्रीय एवं सामाजिक सरोकार ही हैं। किंतु कविताओं से भी आगे बढ़ कर कुछ और कर गुज़रने की छटपटाहट से धीरे-धीरे एक नन्हें अंकुर के रूप में पता नहीं कैसे एक नई सोच उभर रही थी।

यद्यपि मैं भारतीय अनुवाद परिषद् से काफ़ी वर्षों से जुड़ी थी और वर्ष 1982-83 के बाद से मेरा कई भूमिकाओं में परिषद् के कार्य-कलापों में कई प्रकार का योगदान बढ़ गया था, अपनी पारिवारिक एवं कार्यालयी व्यस्तताओं के होते हुए भी मैंने अपनी समूची सामर्थ्य और क्षमता को भारतीय अनुवाद परिषद् की गतिविधियों में झोंक रखा था, परिषद् की संस्थापिका डॉ. गार्गी गुप्त, मेरे तथा अन्य सहकर्मियों के प्रयत्नों से परिषद् अब तक काफ़ी पुख़्ता धरातल अख़्तियार करती जा रही थी, मुझे लगा कि परिषद् में मैं रहूँ या न रहूँ, उसके विकास का मार्ग अब प्रशस्त हो कर ही रहेगा।

मैं उसके अतिरिक्त कुछ और भी करने की सोच रही थी। मन में चिंतन बराबर चल रहा था कि क्या किया जाए। जो सोच धीरे-धीरे आकार ले रही थी उसके विषय में कुछ साथियों और कुछ अन्य लोगों से चर्चा भी चलती रहती। संक्षेप में, यही कह सकती हूँ कि उस छटपटाहट का, उस खलबली का, उस चिंतन का यही सार्थक परिणाम सामने आया कि 'विधि भारती परिषद्' नाम की एक नई संस्था की नींव रखी गई। उसका मुख्य उद्देश्य यह था कि देश की जनता विशेष रूप से महिलाओं और दलित वर्गों का इस मायने में सशक्तिकरण करना होगा कि वह स्वयं के भाग्य-विधाता बनें, क्योंकि देश के संविधान तथा उसके अंतर्गत देश की संसद द्वारा समय-समय पर बनाए गए विधानों के अंतर्गत जनता के अधिकारों का विपुल सृजन किया गया था परंतु अधिकांश जनता अपने अधिकारों के बारे में जानती कितना है, प्रश्न यह था। अपने अधिकारों के बारे में अज्ञानता भी उनके शोषण का कारण होता है। सब से पहले 'विधि भारती परिषद्' ने स्वयं को प्रतिबद्ध किया कि वह अपनी क्षमता के अनुसार देश में कानूनी जागृति लाने का प्रयास करेगी। इस दिशा में एक ओर भी पक्ष था जिस पर ध्यान देने की ज़रूरत महसूस की जा रही थी। देश में प्रायः कानूनों की अवहेलना की प्रवृत्ति अधिक देखी गई

है, यहाँ तक कि लोग यातायात संबंधी नियमों का भी अनुपालन नहीं करते हैं। इसकी वजह क्या है? चिंतन-मनन से यह भी उभर कर सामने आया कि एक तो हमारे काफ़ी कानून देश की स्वतंत्रता-प्राप्ति से पहले ब्रिटिश शासकों ने बनाए थे जो न्यूनाधिक रूप में अभी भी वैसे ही चल रहे थे, देश की ज़रूरतों के मुताबिक, वह कितने संगत हैं या असंगत हैं, इस पर कम ही विचार हो पाया है। दूसरा, यह सभी कानून अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से निर्मित हुए हैं, और वह अनुवाद के माध्यम से ही हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में आ पाते हैं। देश में अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण अब भी लोगों का हिंदी तथा अन्य भाषाओं में उपलब्ध कानूनों की तरफ़ ध्यान नहीं जाने दिया जाता है जिसका परिणाम यह है कि अधिकांश लोग उनसे अनभिज्ञ ही हैं। अनभिज्ञता के कारण लोग काफ़ी हद तक अपने अधिकारों से वंचित रह जाते हैं। ऐसा विचार किया जा रहा था कि 'विधि भारती परिषद्' हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से देश में कानूनी साक्षरता का बीड़ा उठाए और इस प्रकार लोगों का सशक्तिकरण किया जाए।

इस प्रकार 'विधि भारती परिषद्' धीरे-धीरे आकार लेने लगी। काफ़ी शोधात्मक प्रयासों के साथ ही बाद उसका संविधान और उद्देश्यों का निर्माण किया गया। अंतिम रूप देने से पहले तत्कालीन सत्र न्यायाधीश श्री प्रेम कुमार के साथ दो-तीन बैठकें की गईं और उनके अमूल्य सुझावों के संदर्भ में उन्हें अंतिम रूप दिया गया।

एक दिन सौभाग्य से संसद भवन में ही मेरी मुलाकात डॉ. सरोजनी महिषी के साथ हो गईं। डॉ. महिषी केंद्र में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की केबिनेट में विधि मंत्री रही थीं। इसके अलावा वह कर्नाटक के धारवाड़ निर्वाचन क्षेत्र से चार बार संसद सदस्य चुनी गई थीं और अपनी राज्य सभा की सदस्यता के दौरान वह राज्य सभा की उप-सभापति (1982-84) भी रहीं। संसदीय हिंदी परिषद् की अध्यक्ष होने के साथ-साथ वह कई संस्थाओं से जुड़ी थीं। वह न केवल विधिज्ञ थीं बल्कि संस्कृत विज्ञान और ज्योतिष शास्त्र की जानकार भी हैं। हिंदी सेवाओं के लिए बाद में उन्हें 'हिंदी रत्न' से भी सम्मानित किया गया था। शायद उन दिनों वह कापार्ट की चेयरमैन थीं जब मेरी उन से मुलाकात हुई। मैंने उनसे 'विधि भारती परिषद्' संस्था के बारे में बताया और उनसे अनुरोध किया कि वह 'विधि भारती परिषद्' की अध्यक्ष बन जाएँ। उन्होंने मेरे उस अनुरोध को अपनी सहमति दे दी। बस फिर क्या था, मैंने अपने कुछ संसदीय सहयोगियों के साथ मिलकर ज्ञापन तैयार किया और उसमें उन्होंने अध्यक्ष के रूप में हस्ताक्षर कर दिए। उसके बाद उन्हीं के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया में विधि भारती परिषद् का एक बचत खाता खोल दिया गया, जिसे सचिव और कोषाध्यक्ष के साथ मिल कर चलाया जाना था। उन्हीं दिनों अर्थात् 1993 के दिसंबर माह में संस्था के पंजीकरण की कार्यवाही पूरी कर ली गई।

विधि भारती परिषद् के उद्देश्यों के अनुसार एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया जाना था। एक तरफ़ पत्रिका के पंजीकरण की कार्यवाही शुरु की गई और दूसरी

तरफ़ कई लेखकों से आलेख आदि के लिए पत्र द्वारा अथवा मौखिक अनुरोध किया गया। उन दिनों पारिवारिक रूप से घोर मुसीबतों का सामना करते हुए भी किसी अलौकिक शक्ति के सहारे पत्रिका का प्रकाशन किया गया। पत्रिका के प्रवेशांक (अक्तूबर-दिसंबर, 1994) का नई दिल्ली में विट्ठल भाई पटेल हाउस, कांस्टीट्यूशन क्लब में लोकार्पण किया गया। यह लोकार्पण 14 नवंबर, 1994 के दिन निर्धारित था। तत्कालीन केंद्रीय विधि मंत्री श्री हंसराज भारद्वाज ने कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि के रूप में आने की अनुमति दे दी थी। उन्हीं दिनों न्यायमूर्ति श्रीमती सुजाता वी. मनोहर का देश की सर्वोच्च संस्था, उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति हुई थी।

अभी उन्हें सरकारी आवास भी आवंटित नहीं हुआ था। वे जनपथ पर किसी भवन में रह रहीं थीं। जब हम कुछ लोग उन से मिले और उन्हें 'विधि भारती परिषद्' की त्रैमासिक पत्रिका के प्रवेशांक के लोकर्पण के लिए अनुरोध किया। हमारा सौभाग्य था कि उन्होंने उसे सहर्ष स्वीकार किया। 'महिला विधि भारती' का प्रवेशांक भी अपने आप में बहुत सुंदर एवं नायाब बन पड़ा था। एक ओर उसकी साज-सज्जा बहुत उम्दा थी, दूसरी ओर इसमें प्रकाशित सामग्री भी बहुत अच्छी और ऊँचे स्तर की थी। इसमें संविधान विशेषज्ञ डॉ. सुभाष कश्यप का भारत के संविधान पर एक महत्त्वपूर्ण आलेख प्रकाशित हुआ था, वहीं इस प्रवेशांक का आरंभ हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार यशपाल जैन के उद्बोधन आलेख से हुआ था। भारत के पूर्व प्रधान न्यायाधीश तथा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री रंगनाथ मिश्र से श्रीराम शर्मा द्वारा लिया गया एक यादगार साक्षात्कार भी इसमें प्रकाशित हुआ था। इस पत्रिका का लोकार्पण करते हुए न्यायमूर्ति श्रीमती सुजाता वी. मनोहर ने कहा था -- ''इस पत्रिका के प्रवेशांक के लोकार्पण के एक भव्य समारोह में देश की अनेक प्रतिष्ठित विभूतियाँ उपस्थित हैं।'' न्यायमूर्ति श्रीमती सुजाता वी. मनोहर ने पत्रिका का लोकार्पण करते हुए उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा पत्रिका की प्रगति के लिए शुभकामना करते हुए शुभाशीष भी दी।

इस अवसर पर संविधान विशेषज्ञ डॉ. सुभाष कश्यप, प्रतिष्ठित प्रख्यात साहित्यकार श्रीयशपाल जैन, परिषद् की अध्यक्षा डॉ. सरोजनी महिषी, भारतीय अनुवाद परिषद् की ओर से डॉ. गार्गी गुप्त तथा दिल्ली के मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट श्री प्रेम कुमार भाटिया ने अपने सारगर्भित विचार व्यक्त करते हुए शुभकामनाएँ दीं। कार्यक्रम का संचालन दिल्ली विश्वविद्यालय के तत्कालीन रीडर एवं साहित्यकार डॉ. विमेलश कांति वर्मा ने किया। 'विधि भारती परिषद्' की संस्थापिका सचिव एवं 'महिला विधि भारती' पत्रिका की संस्थापक-संपादक के रूप में उस समय अपने विचार व्यक्त करते हुए मैंने अन्य बातों के साथ यह भी कहा था कि ''कानून केवल कानूनविदों के सरोकार का विषय नहीं, बल्कि उसे आम आदमी तक पहुँचना चाहिए। जब तक आम आदमी विशेषतया महिलाओं को उनके हित संवर्द्धन के उपायों से परिचित नहीं कराया जाता, तब तक सभी अधिकार सार्थक नहीं हो पाएँगे।

इस पत्रिका को इस उद्देश्य के लिए ही प्रारंभ किया गया है।''

संपादन के रूप में प्रवेशांक के लिए लिखे संपादकीय का अंतिम पैरा भी अवलोकनीय है -- ''हमने एक स्वप्न देखा है कि 'महिला विधि भारती' पत्रिका कम से कम देश की हर पंचायत तक पहुँचे। इसका प्रकाशन केवल हिंदी-अंग्रेज़ी तक सीमित न रहे, बल्कि भारत की अन्य राष्ट्रीय भाषाओं में भी इसका पदार्पण हो। यह अत्यंत महत्त्वकांक्षी स्वप्न प्रतीत हो सकता है किंतु यह भी सही है कि स्वप्न ही साकार होते हैं और दीप से दीप प्रज्जवलित होता है। हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास भी है कि ऐसा दिन अवश्य आएगा। क्योंकि यह पत्रिका का समय कोई प्रसाधन नहीं, समय की माँग है और इस स्वप्न को साकार करने के लिए आप सब का आह्वान है।''

इस पैरे के संदर्भ में 'महिला विधि भारती' त्रैमासिक पत्रिका इसी वर्ष अर्थात् 2013 में ही अक्तूबर-दिसंबर, 2013 अंक 77 के साथ प्रकाशन के बीसवें वर्ष में प्रवेश कर जाएगी, इस बीच इस पत्रिका के अनेक विशेषांक प्रकाशित हुए, परंतु हमारा यह स्वप्न कि यह पत्रिका देश की हर पंचायत तक पहुँचे, पूरा नहीं हो सका है। हर दिशा में अभी बहुत कार्य किया जाना है। हो सकता है यह कार्य मेरे जीवन काल में पूरा न हो सके, किंतु मैं इस संसार से जब भी विदा लूँ (ईश्वर से प्रार्थना है) तो इस आशा और विश्वास से कि यदि यह स्वप्न मेरे जीवन-काल में पूरा न हो तो बाद में कोई नौ-निहाल इसे अवश्य पूरा करने का प्रयास करे। कहा जाता है कि जब हम किसी कार्य को करने का निश्चय कर लेते हैं तो पूरी कायनात सक्रिय हो जाती है, उसे संपन्न करने के लिए।

मुझे विश्वास है यह पत्रिका पूरे देश में अपना वाँछित स्थान अवश्य बना कर रहेगी। इस बीच एक तरीका निकाला है मैंने कि यथासंभव कुछ पंचायतों को पत्रिका भेजनी आरंभ कर दी जाए। इसमें पत्रिका के पुराने कुछ दुर्लभ अंकों की उपलब्ध प्रतियों से ही इस कार्य को शुरु कर दिया गया है।

'महिला विधि भारती' के प्रवेशांक के लोकार्पण का एक उल्लेखनीय प्रसंग मेरे निजी जीवन से भी जुड़ा है। वर्ष 1992 में अचानक पता चला कि मेरे पति श्री नरेंद्र देव खन्ना, जो बीच-बीच में बीमार चल रहे थे, को पेट में एक ख़तरनाक किस्म का कैंसर है जिसमें स्वस्थ लाभ करने संबंधी दर बहुत कम थी। हम लोगों पर वज्रपात हुआ था। समझ में नहीं आ रहा था कि इस स्थिति से कैसे निपटा जाए। घोर निराशा के उस विकट समय में एक अच्छी बात यह थी कि सौभाग्य से मेरा बेटा उन दिनों एम.बी.बी.एस. कर डॉ. राम मनोहर लोहिया से एम.एस. कर रहा था। वह अपने पिताश्री का हर तरह से ध्यान रखने में जुट गया। उनका एम्स में इलाज चल रहा था। हम उन्हें मुंबई के टाटा अस्पताल में भी दिखाने के लिए ले गए। बाद में उनका एक ऑपरेशन दिसंबर, 1992 में एम्स से कराया गया तथा साथ ही कीमोथैरेपी भी हुई परंतु वह थोड़ा समय ही ठीक रहे। 1994 आते-आते उनका एक ओर ऑपरेशन हुआ, किंतु कैंसर जैसे नामुराद रोग से छुटकारा कैसे

मिलता, अक्तूबर-नवंबर, 1994 तक वह काफ़ी कमज़ोर हो गए थे किंतु वह चाहते थे कि 'विधि भारती पत्रिका के प्रवेशांक का खूब धूमधाम से लोकार्पण हो। उनकी इच्छा को ध्यान में रखते हुए लोकार्पण समारोह का आयोजन हुआ था। नवंबर, 1994 में वह काफ़ी कमज़ोर हो चुके थे अतः प्रवेशांक के समारोह लोकार्पण में वह चाह कर भी नहीं जा सके थे और समारोह के तीन दिन पहले अर्थात् 11 नवंबर, को जिस दिन उनका जन्मदिन भी था, घर पर ही एक सादे से कार्यक्रम में उन्हें 'विधि भारती पत्रिका' के प्रवेशांक की प्रथम प्रति भेंट की गई। यह प्रति उन्हें प्रतिष्ठित लेखक इतिहासकार एवं भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के तत्कालीन महानिदेशक डॉ. ओमप्रकाश केजरीवाल एवं माननीया डॉ. गार्गी गुप्त के कर-कमलों से भेंट की गई। इस अवसर पर अन्य अनेक विद्वान एवं रिश्तेदार भी उपस्थित थे। प्रवेशांक की प्रथम प्रति भेंट में प्राप्त कर खन्ना जी को असीम प्रसन्नता हुई थी। वैसे भी उस गंभीर बीमारी की अवस्था में उन्होंने कभी हिम्मत नहीं हारी थी बल्कि जैसे-जैसे बीमारी का प्रकोप बढ़ रहा था वैसे-वैसे ही उनका व्यक्तित्व अत्यधिक निखरता जा रहा था, उनका शरीर शनैः-शनैः क्षय हो रहा है, परंतु वह बेहतर से एक बेहतरीन इनसान बनते जा रहे थे। वैसे भी वह एक निश्छल पर विशाल हृदय, पर हितकारी, साहसी व्यक्ति थे। 'विधि भारती परिषद्' के वे संरक्षक थे और उसके प्रत्येक कार्य के प्रेरणा स्रोत भी। मज़ाक में हमेशा कहते रहते, ''मुझे अपना पी.ए. बना लेना, मैं बहुत मदद करूँगा।'' किंतु क्रूर नियति ने उन्हें जल्दी ही हमसे छीन लिया। उसी वर्ष 26 दिसंबर, 1994 को वे हमें छोड़कर चले गए। मैं और विशेष रूप से मेरा बेटा यह जानता था कि अब वह अधिक समय तक हमारे साथ नहीं रहेंगे। उनकी सद्गति प्राप्त करने का जब समय आया तो हम तब भी उस अपूरणीय क्षति को सहने के लिए स्वयं को तैयार नहीं कर पाए थे परंतु नियति ने उन्हें हम से हमेशा के लिए छीन लिया। कहा जाता है कि जाने वाला चाहे आपका कितना ही प्रिय क्यों न हो, परंतु मरने वालों के साथ मरा नहीं जा सकता, पल-पल उस दुःख को सहने के लिए ज़िंदा तो रहना ही पड़ता है। अस्तु, 'विधि भारती परिषद्' पत्रिका के दूसरे अंक (जनवरी-मार्च, 1993) में उनके प्रति एक सचित्र श्रद्धांजलि प्रकाशित की गई थी। देवलीना केजरीवाल ने उनकी इस श्रद्धांजलि में लिखा था, ''श्री नरेंद्र देव मानवीय गुणों से ओत-प्रोत थे। उनका सहृदय, सौम्य, माता-पिता एवं जन सेवी, देश सेवी अतिथि-परायण व्यक्तित्व आज हम सब के लिए प्रेरक हैं। दूसरों के सुख-दुःख का पूरा ख़्याल रखने वाले श्री खन्ना जी के एक बार जो संपर्क में आ गया, उनके स्नेही एवं सरल व्यक्तित्व से प्रभवित हुए बिना नहीं रहा। वे एक सच्चे कर्म योगी थे। जिस कार्य को भी हाथ में लेते, उसे पूरी निष्ठा और लगन से पूरा करते थे। सरकारी सेवा के अलावा वे होमगार्ड्स की स्वयंसेवी संस्था में वर्षों कार्यरत रहे और देश की हर एक नाज़ुक घड़ी में -- चाहे वह 1965 और 1971 का भारत-पाक युद्ध हो या 1975 की आपात स्थिति या फिर तत्पश्चात् आतंकवादी गतिविधियों के कारण

उत्पन्न कोई जटिल स्थिति हो -- वे न केवल स्वयं तत्परता से अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करते अपितु अपने साथियों को भी इसके लिए प्रेरित करते। उनके साथी उन्हें हमेशा अपना आदर्श मानते थे।''

उनके दुःखद निधन से मैंने न केवल अपना जीवन-साथी खो दिया था अपितु 'विधि भारती परिषद्' के लिए भी यह एक अपूर्णीय क्षति थी। क्योंकि हर किसी कार्य में उनकी अनुपस्थिति हमेशा सालती रहती। इस संबंध में मैं अपने एक अनोखे अनुभव का उल्लेख अवश्य करना चाहती हूँ। वर्ष 1996 में 19 जून, को 'विधि भारती परिषद्' की ओर से एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। इस संगोष्ठी का विषय था 'महिलाएँ और पर्यावरण'। परिषद् के तत्त्वावधान में इस प्रकार की पहली संगोष्ठी थी। उसके आयोजन के संबंध में तैयारी करते हुए मुझे हर क़दम पर अपने पति खन्ना जी की कमी का अनुभव हो रहा था। मुझे आज भी स्पष्ट रूप से याद है कि मैं उस जून के प्रथम सप्ताह में संगोष्ठी संबंधी निमंत्रण-पत्र भेजने के लिए आमंत्रित किए जाने वाले लोगों के नामों की सूची पर कार्य कर रही थी। मैं उस समय घर के ड्राइंग रूम में बैठी कार्य कर रही थी। घर के सभी सदस्य सो चुके थे। कार्य करते-करते काफ़ी समय हो गया था, शायद रात के बारह बज चुके थे और मैं स्वयं को काफ़ी थका महसूस कर रही थी और शायद मन के भीतर यह अहसास चल रहा था कि यदि आज खन्ना जी होते तो कितना अच्छा होता।

उसी समय मुझे महसूस हुआ कि ड्राइंग रूम का दरवाज़ा खुला। मैं उस समय प्रस्तावित आमंत्रित किए जाने वाले अतिथियों के नामों की सूची पर आँखें गड़ाए थी, मैंने सिर उठा कर देखा। यह क्या? दरवाज़ा खोल कर अंदर आने वाला कोई और नहीं, खन्ना जी थे और उन्होंने अंदर आते हुए और मुस्कुराते हुए कहा, ''मैं हूँ न।'' आश्चर्य से मैंने अपनी आँखों को मला और पुनः देखा, वहाँ कोई नहीं था। परंतु उनका वहाँ सशरीर उपस्थित होना? इसे मैं आज तक नहीं समझ सकी। ऐसा कैसे संभव है? अपने को कई बार समझाने का प्रयास किया हे कि काम और थकान की वज़ह से मुझे क्षणिक झपकी आ गई हो और मैंने उन्हें स्वप्न में देखा होगा। लोग जागते हुए भी स्वप्न देखते ही हैं, मैंने भी खुली आँखों से यह स्वप्न देखा होगा। पर स्वप्नों में तो वह वर्षों लगभग हर रोज़ आते रहे, वही क्यों, वर्षों साथ रहे मेरे सास-ससुर भी प्रायः स्वप्नों में आते रहे हैं किंतु उस दिन का अनुभव उन सब स्वप्नों से एकदम अलग था। मैंने उन्हें सशरीर वहाँ देखा था और उन्हें कहते हुए सुना था कि ''मैं हूँ न।'' चाहे मेरा यह स्वप्न था या अन्यथा, इसके बाद उस संगोष्ठी आयोजन में मेरा उत्साह बहुत बढ़ गया था। ऐसा महसूस हो रहा था कि खन्ना जी इस संसार में न रहते हुए भी मेरे साथ थे। कई दफ़ा मैं कहा करती थी कि मैं यही मान रही हूँ कि जैसे वह अमेरिका चले गए हैं जहाँ वास्तव में लोगों की बरसों मुलाकातें नहीं होती।

19 जून, 1996 को 'विधि भारती परिषद्' की प्रथम संगोष्ठी थी जिसका आयोजन नई दिल्ली में विट्ठल भाई पटेल हाउस के कांस्टीट्यूशन क्लब में स्पीकर हॉल में किया

गया था। इस संगोष्ठी का उद्घाटन किया था 'राष्ट्रीय महिला आयोग' की तत्कालीन अध्यक्षा श्रीमती मोहिनी गिरि ने। इस संगोष्ठी की अध्यक्षता की थी दिल्ली के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंह वर्मा ने। इस अवसर पर पांडेचेरी के पूर्व उप-राज्यपाल एवं मालदीव के पूर्व राजदूत श्री हरस्वरूप सिंह ने 'महिलाएँ और पर्यावरण' विषय पर मुख्य भाषण दिया था। इस संगोष्ठी की एक और उल्लेखनीय बात यह थी कि संगोष्ठी के लिए मंगलाचरण प्रख्यात गीतकार श्री मधुर शास्त्री जी ने किया जिसमें उन्होंने अथर्ववेद के पर्यावरण मंत्र (19/10/8) का गायन किया था जो इस प्रकार था --

शं नः सूर्यउरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सनवापः॥

(अथर्ववेद -- 10/10/8)

(विस्तृत-दृष्टि हमारे लिए कल्याणकारी हो। (प्राणप्रदवायु प्रदान करे), चारों दिशाएँ हमारे लिए मंगलकारी हो (प्रदूषणहीन वातावरण चारों ओर रहे), सुस्थिर गिरिमाला शांति प्रदान करे। नदियाँ हमारे लिए शांतिप्रद हों तथा जल भी शांतिदायक हो। (पर्यावरण की शुद्धता से ही यह सब संभव हो सकता है।)

इसके बाद उन्होंने सरस्वती वंदना की थी। आज मधुर शास्त्रीजी एवं माननीय साहिब सिंह वर्मा जी हमारे बीच नहीं हैं, परंतु उनकी स्मृति हमेशा बनी रहती है बल्कि यह कहना चाहिए कि ऐसे व्यक्तित्व कभी मरा नहीं करते, अमर हो जाते हैं। 'विधि भारती परिषद्' और हमारे अहोभाग्य थे कि हमें उस समय उनका सान्निध्य मिला। 'विधि भारती परिषद्' की 'महिलाएँ और पर्यावरण' विषय पर यह राष्ट्रीय संगोष्ठी अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं यादगार रही। इसमें सभी वक्ताओं के भाषण अत्यंत ओजस्वी, प्रेरक एवं विद्वतापूर्ण थे। लगभग 17-18 वर्ष बाद जब मैंने उस 'राष्ट्रीय संगोष्ठी' की रिपोर्ट को पढ़ा 'जो विधि भारती पत्रिका के अंक 8 (जुलाई-सितंबर, 1996) में प्रकाशित हुई थी तो उसे पढ़ कर मुझे 'विधि भारती परिषद्' की इस राष्ट्रीय संगोष्ठी के रूप में हुई उपलब्धि पर वास्तव में बहत गर्व और आह्लाद हुआ, जिसे मैं आज सब के साथ बाँटना चाहती हूँ। रिपोर्ट पढ़ कर यह भी लगता है कि मानो वह संगोष्ठी आज से कोई डेढ़ दशक पहले नहीं, अपितु इसी वर्ष जून में हुई हो, क्योंकि उस संगोष्ठी में कही गई बातें भावी कथन-सी प्रतीत होती हैं। ऐसा लगता है तब से ले कर अब तक की स्थिति भी प्रायः लगभग वैसी ही है और पर्यावरण की समस्या टस से मस नहीं हुई बल्कि समस्या और विकराल हुई है। अतः इसलिए मैं उस संगोष्ठी की पूरी की पूरी रिपोर्ट को इस हीरक जयंती अंक में पुनः प्रकाशित करने जा रही हूँ। हमारे मान्यवर पाठक-गण उसे पढ़ेंगे तो उन्हें यह नहीं लगेगा कि उस समय कार्यक्रम में गणमान्यों द्वारा व्यक्त विचार दो दशक पहले के हैं। वे आज भी उतने ही संगत हैं जितने उस समय थे।

(क्रमशः देखें अगले अंक में)

❑